निजीकरण के नाम पर बंदरबांट

एके राय

सार्वजनिक उद्योगों के निजीकरण का नतीजा पूरे देश में जो भी हो इस्को कंपनी का निजीकरण आज सार्वजनिक बहस का मुद्दा बन गया है। पश्चिम बंगाल के इस इस्पात संयंत्र को बीमार पड़ने के कारण ही सार्वजनिक क्षेत्र में लाया गया था। लेकिन आज फिर उसे निजी हाथों में सौंपा जा रहा है। सरकार की बनाई टी. शंकर समिति की राय है कि इस की बीमारी का इलाज अब बंबई की मुकुंद लिमिटेड नाम की कंपनी ही करेगी। लेकिन इस सलाह को कानूनी जामा पहनाने के लिए सरकार ने संसद में जो विधेयक पेश किया था वह तीव्र विरोध के कारण अभी भी संसदीय समिति के पास लटका पड़ा है। संसद में अब कांग्रेस पार्टी को अपना बहुमत हासिल हो गया है। इसलिए विधेयक पेश कर के उसे पास करवाने से पीछे हटना एक दिलचस्प घटना है। जिससे संकेत मिलता है कि शासक दल के अंदर भी इस मुद्दे पर गहरे मतभेद है। कांग्रेस का ही श्रमिक संगठन भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस अपनी सरकार के निजीकरण के फैसले के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने पर तैयार हो गया है। पिछले साल सितंबर में इस्को के निजीकरण के विरुद्ध सार्वजनिक क्षेत्र के सभी इस्पात कारखानों में हड़ताल हुई थी जिसमें मजदूरों का साथ अधिकारियों ने भी दिया। यह भी एक महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि श्रमिकों और अधिकारियों के संबंध अक्सर छत्तीस के रहते हैं। संसदीय समिति का विचार जो भी हो इस्को के निजीकरण के बहाने इस्पात उद्योग पर जो काले बादल मंडराने लगे है उस पर देश में खुली बहस होनी चाहिए।

दुनिया में जितने प्रकार के धातुओं का उत्पादन होता है उन में अकेले लोहे का उत्पादन उन सब से उन्नीस गुना ज्यादा है। लोहा तथा इस्पात बुनियादी उद्योगों का आधार है और इस की खपत को ही विकास का मापदंड माना जाता है। सामान्य इंजीनियरिंग से लेकर सुरक्षा तक के उपकरणों के निर्माण में इस की आवश्यकता है। भारत प्राचीन काल से ही लोहे तथा इस्पात के उत्पादन में दक्ष है। दिल्ली का लौह स्तंभ आज भी इस तकनीक का विस्मयकारी उदाहरण है। इस्पात बनाने की कई प्रक्रियाओं का इस्तेमाल दुनिया ने भारत से ही सीखा। औद्योगिक क्रांति के बाद विश्व में इस्पात उद्योग का जो फैलाव हुआ उस में भी भारतीय इस्पात उद्योग की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इस्पात बनाने के लिए जरूरी कोयला, लौह अयस्क, मैग्नीज आदि सभी भारत में उपलब्ध हैं। इस के बावजूद दुनिया की बात तो अलग एशिया के स्तर पर भी भारत के इस्पात उद्योग की गिनती कहीं नहीं है। जहां रूस में १५.७ करोड़ टन, अमेरिका में १४ करोड़ टन, जापान में १० करोड़, चीन में ७.९ करोड़, दक्षिण कोरिया में १.९ करोड़ टन इस्पात का उत्पादन होता है वहीं भारत में सिर्फ डेढ़ करोड़ टन उत्पादन होता है। सरकारी क्षेत्र में एक करोड़ बनता है। बाकी निजी संयंत्रों में। इस के बाद भी इस्पात बिक्री के अभाव में पड़ा हुआ है। जिस के कारण १९९३-९४ का लक्ष्य घटाना पड़ा और शायद यही हाल अगले सालों का भी हो। इस की वजह गलत तरीके की पूंजीवादी दिशा है जो हमने अपना रखी है। देश की आर्थिक आत्मनिर्भरता किस तरह इस्पात उद्योग से संबंधित है, वह इस्पात उद्योग में विकास दर के ह्रास से ही स्पष्ट हो जाता है। चौथी और पांचवीं योजना तक भारत में कम से कम कागज पर ही सही स्वनिर्भरता का लक्ष्य रखा जाता था। १९७५ में जब इस उद्योग पर एक श्वेत पत्र प्रकाशित हुआ उस में दो हजार ईस्वी तक दस करोड़ टन इस्पात के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया था। अस्सी के दशक में वह घट कर तीन से साढ़े तीन करोड़ टन हो गया। आज दो से २.५ करोड़ टन के उत्पादन के लक्ष्य की बात की जाती है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में एक भी इस्पात संयंत्र नहीं लगने जा रहा है। आधुनिकीकरण की जो योजना है उस में उत्पादन में वृद्धि के बजाय कटौती को प्राथमिकता दी जा रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात संयंत्रों में उत्पादन की तुलना में श्रमिकों की संख्या ज्यादा है। इस तरह की हवा बनाई जा रही है और बताया जाता है कि इसी कारण इस्पात महंगा है। जबकि सच्चाई यह है कि इस्पात उत्पादन के खर्च में कर्मचारियों का वेतन सिर्फ सोलह प्रतिशत है। कच्ची सामग्री का २९.४ प्रतिशत और तकनीकी कर्मचारियों का २९.९ प्रतिशत। शायद बहुतों को जानकारी नहीं है कि अमेरिकी इस्पात भारत से भी महंगा है। उस का निर्यात गिरने लगा है। और इसलिए इस उद्योग को बचाने के लिए भारत के कुछ इस्पात मिश्रणों पर लगभग ४९ प्रतिशत अतिरिक्त कर लगाए गए है। फिलहाल भारत उच्च कोटि का तीन करोड़ टन लोहा जापान को निर्यात कर छह सौ करोड़ रुपए कमा रहा है, जो कि सिर्फ ०.१५ करोड़ टन इस्पात के निर्यात के मूल्य के बराबर है। जाहिर है कि लोहा निर्यात करने के बदले इस्पात तैयार करना हमेशा ही राष्ट्र हित में रहा है। और इसी लक्ष्य में हम धीरे-धीरे पीछे हटते जा रहे है। क्या इस विकृति का इलाज इस उद्योग का निजीकरण है? इस्को कंपनी के निजीकरण के बारे में जो विरोधाभास हैं वे गंभीर चिंतन का विषय बन गए हैं। इस कंपनी के विभिन्न संयंत्रों में बत्तीस हजार चार सौ चौदह कर्मचारी हैं। शुरू में ही संसद में विधेयक पारित करने के समय तत्कालीन इस्पात मंत्री मोहन कुमार मंगलम ने वायदा किया था कि इस संयंत्र को वापस निजी हाथों में नहीं दिया जाएगा। इस के आधुनिकीकरण से पच्चीस लाख टन वार्षिक उत्पादन का लक्ष्य रखा जाएगा। आज यह वायदा समाप्त हो गया है, जबकि उन्हीं के पुत्र सांसद तथा मंत्री हैं। अधिग्रहण के बाद आधुनिकीकरण और विस्तार की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया। भारतीय इस्पात संयंत्रों में प्रति टन उत्पादन में कोक का इस्तेमाल ज्यादा होता है जबकि विदेशों में इस की खपत की दर कम है। इस का बड़ा कारण यह है कि विदेशों में जो कोक इस्तेमाल होता है उस में राख का प्रतिशत सिर्फ सात या आठ रहता है जबकि भारत में १८ से २२ प्रतिशत राख रहती है। ऊर्जा की खपत के लिहाज से भी जहां भारत में नौ गैगा कैलोरी ऊर्जा लगती है वहीं विदेशों में चार या पांच। उल्लेखनीय है कि अगर कोक दर में दस प्रतिशत की कमी हो जाए तो इस्पात उत्पादन में प्रति टन कम खर्चा आएगा। इसलिए विदेशों की बात तो अलग रहने दीजिए इस्को संयंत्र की कोक दर को टिस्को कारखाने के बराबर लाने से भी उत्पादन खर्च प्रति टन छह सौ रुपए कम आ जाएगा जिस से पचास करोड़ की बचत होगी। जब कि कर्मचारियों की छंटनी के बाद और दो सौ करोड़ रुपए सुधार में लगने से कुल चार करोड़ रुपए की ही हुई है।

कर्मचारियों की इस लगन का इनाम अब यह मिल रहा है कि संयंत्र का ही निजीकरण हो रहा है। इस्को के आधुनिकीकरण पर कोई अब सवाल नहीं उठाया जा रहा है। इस सिलसिले में एक समझौता पत्र भी तैयार किया गया था जिस के अनुसार छह सौ करोड़ रुपए के सुधार के साथ उत्पादन क्षमता भी दस लाख टन से बढ़ कर बीस या पच्चीस लाख टन हो जाती है। लेकिन यह काम कौन करेगा, कैसे करेगा इस पर विवाद बना रहा। पहले यह सुझाव आया कि इसे कुछ जापानी व्यापारिक संगठनों को दिया जाए जो पुराने संयंत्रों को हटा कर बाहर से ही नया संयंत्र लगा देंगे। जनता दल की सरकार के समय यह नाटक किया गया। तब दस्तूर एंड कंपनी को यह जिम्मा सौंपा गया जिस ने कुछ पुराने उपकरण बनाए रख कर उस में सुधार कर के छह हजार पांच सौ करोड़ की एक योजना दी। लेकिन इसे भी स्वीकार नहीं किया गया। लेकिन इन सब योजनाओं को ताक पर रख कर सरकार ने निजीकरण का फैसला कर लिया है और इसके लिए बंबई की मुकुंद लिमिटेड को चुना गया है। इस ने वायदा किया है कि तीन हजार पांच सौ करोड़ रुपए खर्च कर के वह इस कारखाने से बीस लाख टन सालाना उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त करेगी। विशेषज्ञों ने इस कंपनी के सुझावों को त्रुटिपूर्ण पाया है। लेकिन सरकार बारह सौ से पंद्रह सौ करोड़ रुपए के बदले इस्को को सिर्फ एक सौ पचास करोड़ रुपए में बेचने के लिए तैयार हो गई है। ठीक उसी तरह जिस तरह कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश सरकार ने डल्ला सीमेंट कारखाने को नाममात्र कीमत पर डालमिया को सौंपने की कोशिश की थी। इस कदम के लिए सरकार की दलील है कि आवश्यक सुधार के लिए उस के पास संसाधनों की कमी है। यह सही है कि योजना ने इस्पात मंत्रालय की चौबीस हजार करोड़ की मांग को काट कर चौदह हजार करोड़ कर लिया है। और सेल के अध्यक्ष के अनुसार आठवीं योजना में सेल अपनी बजत से छह हजार आठ सौ करोड़ रुपए की लागत से आधुनिकीकरण का काम करेगी। साथ ही यह भी कहा गया है कि चार हजार से पांच हजार करोड़ रुपए भिलाई, दुर्गापुर तथा राउरकेला इस्पात संयंत्रों के लिए खर्च किया जाएगा। बोकारो के आधुनिकीकरण की योजना एक हजार छह सौ पच्चीस करोड़ रुपए की है। इस स्थिति में सेल छह हजार आठ सौ करोड़ रुपए इस्को के आधुनिकीकरण में नहीं लगा सकता। सवाल यह है कि करोड़ों रुपए की राष्ट्रीय संपत्ति को किसी निजी संस्था के हवाले करने का अधिकार सरकार को है? सवाल यह भी है कि मुकुंद लिमिटेड की विश्वसनीयता क्या है? छह सौ करोड़ रुपए सालाना व्यापार करने वाली यह कंपनी इस समय एक मिनी इस्पात कारखाना चलाती है।

सेल ने पिछले साल दस हजार करोड़ का व्यापार किया। अगर वह इस्को के आधुनिकीकरण के संसाधन नहीं जुटा सकता तो एक निजी कंपनी कैसे जुटा सकती है? अगर एक निजी कंपनी मुनाफे पर बाजार से पैसा उठा सकती है तो सेल क्यों नहीं उठा सकता? जब कि आज भी सेल के शेयरों का बाजार भाव बुरा नहीं है। आश्चर्य की बात है कि निजीकरण उस समय हो रहा है जब कि इस्पात उद्योग में निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र ही ज्यादा सफल हो रहा है। १९९२-९३ में निजी क्षेत्र का कारखाना टिस्को का क्रमशः २९४.५६ करोड़ से घट कर १२७.१३ करोड़ हुआ। लेकिन तमाम भ्रष्टाचार और अकुशलता के बावजूद सेल का उत्पादन २६५.७२ करोड़ से बढ़ कर ४२३.३० करोड़ हो गया। देश के अनेक निजी क्षेत्र के मिनी इस्पात प्लांट बीमार पड़े हैं और सरकार ऐसे ही एक मालिक को एक विराट सार्वजनिक कंपनी दे रही है। छोटे इस्पात कारखानों की कथित कुशलता के बावजूद पिछले साल उन के उत्पादन में गिरावट आ गई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार इस तरह के १७७ छोटे कारखानों में से ७३ तो बंद पड़े हैं। ४० में उन की क्षमता के अनुसार काम नहीं हो रहा है। और १० हजार से ज्यादा लोग काम से हटा दिए गए हैं। इस्को की बीमारी का इलाज कराने से पहले क्यों नहीं इन छोटे इस्पात कारखानों की बीमारी का इलाज किया जाए। आज अगर यह दलील दी जाती है कि सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात कारखानों के आधुनिकीकरण के लिए सरकार के पास पर्याप्त पैसा नहीं है तो सरकार को चाहिए कि वह उसी प्रकार आर्थिक साधन जुटाए जिस प्रकार निजी कंपनियां जुटाती हैं।

इसी तरह का कार्यक्रम चीन ने भी अपने पुराने संयंत्रों को सुधारने में अपनाया। इस्को के निजीकरण के पीछे जो तकनीक या आर्थिक कारण बताए जाते हैं उन पर सहसा विश्वास नहीं होता। इस के पीछे निहित स्वार्थों की राजनीति हो सकती है लेकिन इस राजनीति के लिए यह तर्क देना बेबुनियाद है कि सार्वजनिक क्षेत्र में चलनेवाले उद्योगों की बीमारी का इलाज निजी सेठों और उस के हाथों में देना है।